R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2024-26

मूल्य–7 रुपये, वर्ष–24, अङ्क–5 मई 2024

मङ्गलायतन

आज मुनिराज पधारे हैं, ऋषभ मुनिराज पधारे हैं

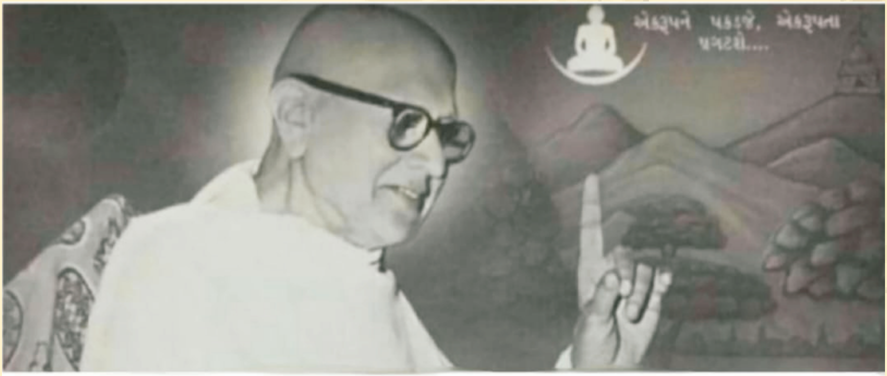

एक बार हाँ तो कह

हे जीव! हे प्रभु! तू कौन है? इसका कभी विचार किया है? तेरा स्थान कौन सा है और तेरा कार्य क्या है, इसकी भी खबर है? प्रभु, विचार तो कर तू कहाँ है और यह सब क्या है, तुझे शांति क्यों नहीं है?

प्रभु! तू सिद्ध है, स्वतंत्र है, परिपूर्ण है, वीतराग है, किन्तु तुझे अपने स्वरूप की खबर नहीं है इसीलिये तुझे शांति नहीं है। भाई, वास्तव में तू घर भूला है, मार्ग भूल गया है। दूसरे के घर को तू अपना निवास मान बैठा है किन्तु ऐसे अशांति का अंत नहीं होगा।

भगवन! शांति तो तेरे अपने घर में ही भरी हुई है। भाई! एक बार सब ओर से अपना लक्ष हटाकर निज घर में तो देख। तू प्रभु है, तू सिद्ध है। प्रभु, तू अपने निज घर में देख, पर में मत देख। पर में लक्ष्य कर करके तो तू अनादिकाल से भ्रमण कर रहा है। अब तू अपने अंतरस्वरूप की ओर तो दृष्टि डाल। एक बार तो भीतर देख। भीतर परम आनंद का अनंत भंडार भरा हुआ है, उसे तनिक सम्हाल तो देख। एक बार भीतर को झांक, तुझे अपने स्वभाव का कोई अपूर्व, परम, सहज, सुख अनुभव होगा।

अनंत ज्ञानियों ने कहा है कि तू प्रभु है, प्रभु! तू अपने प्रभुत्व की एक बार, हाँ तो कह।

– श्री कानजी स्वामी

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (रजि.), अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-24, अङ्क-5 (वी.नि.सं. 2550; वि.सं. 2080) मई 2024

इक्षु रस का किया पारणा....

इक्षु रस का किया पारणा, आखा तीज महान।
जय जय आदीनाथ भगवान ।।टेक ।।

एक वर्ष आहार न पाया,
ऐसा कर्म उदय में आया।
फिर भी समता भाव धराया
आतम में ही चित्त लगाया।
जग की प्रतिकूलताओं में,
किया भेदविज्ञान ।।1 ।।

ऐसी कठिन आँकड़ी लेकर,
निकले थे मुनिराज।
सारा जग हैरान हो गया,
क्या दें हम महाराज ।।
नृप श्रेयांस स्वप्न फिर देखे
आहार विधि महान ।।2 ।।

साभार : मङ्गल भक्ति सुमन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
स्व. श्री पवन जैन, अलीगढ़

सम्पादक
डॉ. जयन्तीलाल जैन, मङ्गलायतन वि०वि०

सह सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, मङ्गलायतन

क्या - कहाँ

प्रथमानुयोग	धर्म और अधर्म	5
द्रव्यानुयोग	समयसार नाटक	10
	स्वानुभूतिदर्शन :	16
प्रथमानुयोग	हस्तिनापुर का अतिशयकारी इतिहास	18
करणानुयोग	भरतक्षेत्र के खण्ड	20
प्रथमानुयोग	कवि परिचय	25
करणानुयोग	श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान	26
द्रव्यानुयोग	बालवाटिका	28
	जिस प्रकार–उसी प्रकार	29
	समाचार–दर्शन	30

शुल्क :
एक प्रति : 07.00 ₹
आजीवन (15 वर्ष) : 1000.00 ₹

प्रथमानुयोग

आगामी तीर्थधाम चिदायतन के पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के पावन प्रसंग में पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा पंचकल्याणक पर किए गए प्रवचनों का धारावाहिक प्रकाशन किया जा रहा है।

गर्भकल्याणक प्रवचन

धर्म और अधर्म

आत्मा के अन्तर स्वभाव के अवलम्बन के अतिरिक्त अन्य किसी का भी अवलम्बन लेना परद्रव्यानुसार परिणति है और उससे शुभ-अशुभभाव की उत्पत्ति होती है, जो कि बन्धन का कारण है। अहो! स्वद्रव्यानुसार परिणति, वह धर्म और परद्रव्यानुसार परिणति, वह विकार—ऐसा समझने पर स्व-पर का भेदज्ञान हुए बिना नहीं रहता और वह जीव, परद्रव्यानुसार परिणति को छोड़कर स्वद्रव्य—सन्मुख हुए बिना नहीं रहता।

आत्मा, देह-मन-वाणी की क्रिया को तो व्यवहार से भी नहीं कर सकता क्योंकि वे तो आत्मा से भिन्न पदार्थ हैं। पर के अवलम्बन से होनेवाले पुण्य-पापभावों का कर्ता व्यवहार से आत्मा है, परमार्थ स्वभाव की दृष्टि से तो आत्मा उन पुण्य-पापभावों का कर्ता भी नहीं है।

कर्म, आत्मा को विकार नहीं कराते परन्तु आत्मा की परद्रव्यानुसार परिणति ही अशुद्ध उपयोग का कारण है, अन्य कोई कारण नहीं है। आत्मा का स्वभाव, अशुद्ध उपयोग का कारण नहीं है तथा कर्म का उदय आदि अन्य कारण भी अशुद्ध उपयोग के कारण नहीं है। कर्म तो आत्मा के ज्ञान का ज्ञेय है। परद्रव्यानुसार परिणति-यह एक ही अशुद्धता का कारण है और स्वद्रव्यानुसार परिणति-यह एक ही शुद्धता का कारण है, अन्य कोई कारण नहीं है — ऐसा अस्ति-नास्ति अनेकान्त है। परद्रव्य को आत्मा के विकार करानेवाला मानना, वह एकान्त है।

जीव ने अनन्त काल में आत्मस्वभाव की यथार्थ समझ के बिना व्रतादि

किये हैं परन्तु इससे आत्मा को धर्म का किञ्चित् भी लाभ नहीं हुआ है; उल्टे उस व्रत के राग में धर्म मानकर जीव ने अनन्त संसार में परिभ्रमण किया है। आत्मा, परद्रव्य के ग्रहण-त्याग का कार्य नहीं कर सकता, वह तो ज्ञान का ज्ञेय है तथा राग-द्वेष होते हैं, उनका करने-छोड़नेवाला भी आत्मा व्यवहार से है; वस्तुतः धर्मी तो उसका ज्ञाता ही है। 'राग को छोड़ूँ'—ऐसी दृष्टि से राग नहीं छूटता, अपितु स्वभाव के आश्रय में रहने से राग-द्वेष होते ही नहीं; इसी को व्यवहार से कहा है कि 'राग-द्वेष को छोड़ा।'

राग—द्वेषरूप अशुद्धोपयोग, परद्रव्य के आश्रय से ही होता है, मेरे स्वभाव के आश्रय से अशुद्धता नहीं होती; इस कारण मैं अशुद्धोपयोग के अभाव के लिए समस्त परद्रव्यों के प्रति मध्यस्थ होता हूँ, अर्थात् समस्त परद्रव्यों का लक्ष्य छोड़कर आत्मस्वभाव का आश्रय करता हूँ। समस्त परद्रव्य मुझसे भिन्न है; इसलिए मैं उनके प्रति अत्यन्त मध्यस्थ होता हूँ। वस्तुतः परद्रव्यों के सन्मुख देखकर उनके प्रति मध्यस्थ नहीं होना है, परन्तु स्वद्रव्य में लीन रहने पर समस्त परद्रव्यों के प्रति मध्यस्थता हो जाती है। स्वद्रव्य में लीन रहना अस्ति है और परद्रव्य के प्रति मध्यस्थता होना नास्ति है।

'मैं समस्त परद्रव्यों के प्रति मध्यस्थ होता हूँ' — ऐसा कहा, वहाँ समस्त परद्रव्यों में क्या शेष रह गया? अहो! देव—गुरु—शास्त्र की श्रद्धा, नव तत्त्वों का ज्ञान और पञ्च महाव्रतरूप व्यवहाररत्नत्रय का आश्रय भी यहाँ निकाल दिया है। व्यवहाररत्नत्रय भी परद्रव्य के अवलम्बन से है, इसलिए मैं उसके प्रति भी मध्यस्थ हूँ, अर्थात् उस व्यवहाररत्नत्रय का अवलम्बन छोड़कर अभेद आत्मा का ही आश्रय करता हूँ।

शास्त्र में व्यवहाररत्नत्रय को निश्चयरत्नत्रय का कारण कहा हो तो यह बात उपचार की है; यहाँ तो व्यवहाररत्नत्रय को हेय कहकर, उसका आश्रय छुड़ाया है क्योंकि वस्तुतः व्यवहाररत्नत्रय, निश्चयरत्नत्रय का कारण नहीं है। निश्चयरत्नत्रय का कारण तो स्वद्रव्यानुसार परिणति ही है, कारण कि

व्यवहाररत्नत्रय तो शुभोपयोगरूप है, जबकि निश्चयरत्नत्रय, शुद्धोपयोगरूप है।

श्री आचार्यदेव कहते हैं कि शुद्ध उपयोग को सिद्ध करने के लिए मैं समस्त परद्रव्यों के प्रति मध्यस्थ होकर ज्ञानस्वरूप निज आत्मा को ध्याता हूँ। देखो! यही ज्ञानी का कार्य है और यही ज्ञानी का अभ्यास है। ज्ञानी, पञ्च महाव्रतादि के शुभराग में रहने का अभ्यास नहीं करते, किन्तु शुद्धोपयोग में रहने का अभ्यास करते हैं। अज्ञानी जीव, परद्रव्यों में राग—द्वेष करके अशुद्धतारूप ही होता है, इसके अतिरिक्त परद्रव्य का तो वह भी कुछ नहीं कर सकता।

अज्ञानी को स्व—पर की भिन्नता का भान भी नहीं है; अत: उसे तो सदा ही परद्रव्यानुसार परिणति से अशुद्धोपयोग ही होता है। ज्ञानी, स्व—पर की भिन्नता का भान करके स्वद्रव्यानुसार परिणति से शुद्धोपयोग में ही रहने की भावना करता है।

हे भाई! चारित्रदशा के पहले वस्तु की सच्ची श्रद्धा और ज्ञान तो कर! सच्चे श्रद्धा—ज्ञान के बिना व्रत, तप और चारित्र समस्त ही 'रण में पीठ दिखाने' के समान है, उनसे आत्मा का भव भ्रमण नहीं मिटता। 'मेरे द्रव्यस्वभाव में मैं शान्ति का सागर हूँ, मेरी सिद्धदशा मेरे में पड़ी है — ऐसे निजद्रव्य को मैं ध्याता हूँ और अपने से भिन्न समस्त परद्रव्यों में मैं मध्यस्थ होता हूँ' — ऐसी दशा, मोक्ष का कारण है। ऐसी दशा प्रगट होने के पूर्व श्रद्धा—ज्ञान प्रगट करना भी सम्यग्दर्शन—ज्ञानरूप धर्म है।

परद्रव्यानुसार होनेवाले शुभाशुभभावों में आत्मा का धर्म नहीं है। स्वद्रव्य के अनुसरण से ही सम्यग्दर्शन—ज्ञान—चारित्र प्रगट होते हैं — वही धर्म है। आत्मा का धर्म आत्मसन्मुखता से अपनी निर्मल अवस्था में ही होता है, इसके अतिरिक्त किसी पर की सन्मुखता से अथवा कहीं पर्वत पर, गुफा में, मूर्ति में या देहादिक की क्रिया में आत्मा का धर्म नहीं है। इस प्रकार जाननेवाला धर्मात्मा, स्वसन्मुख शुद्धोपयोग की ही भावना करता है कि मैं

आत्मा, अपने अतिरिक्त समस्त परद्रव्यों में राग—द्वेषरहित मध्यस्थ होकर, अर्थात् अशुद्धोपयोगरहित होकर, निज शुद्धात्मा के स्वरूप को ही निश्चलरूप से ध्याता हूँ। ऐसी दशा प्रगट होना साक्षात् धर्म है और वही मुक्ति का कारण है। अभी जिसे इस दशा का भान भी नहीं है और पुण्य से, राग से अथवा जड़ की क्रिया से धर्म मानता है, वह तो धर्म से बहुत दूर, अर्थात् मिथ्यादृष्टि है।

अपने आत्मस्वरूप की भ्रान्ति सबसे बड़ा पाप है और वही जन्म—मरण का भयङ्कर भव रोग है। यहाँ उस मिथ्याभ्रान्ति का अभाव कैसे हो — यह बात चलती है।

श्रीमद्राजचन्द्रजी कहते हैं कि —

आत्मभ्रान्ति सम रोग नहिं, सद्गुरु वैद्य सुजान;
गुरु आज्ञा सम पथ्य नहिं, औषध विचार—ध्यान॥

'गुरु आज्ञा' अर्थात् श्रीगुरु ने जैसा आत्मस्वरूप कहा, वैसा समझना तथा उसका विचार और ध्यान करना ही भवरोग मिटाने का उपाय है। सर्व प्रथम शुभाशुभरहित चैतन्यस्वरूप आत्मस्वभाव का भान करना ही आत्मभ्रान्ति से छूटने का उपाय है।

मैं अनादि—अनन्त पवित्र गुणों का सागर हूँ। जितने गुण सिद्ध भगवान की आत्मा में है, उतने ही गुण मेरे में हैं। सिद्ध भगवान जैसी ही मेरी प्रभुता मुझमें भरी है; इस प्रकार अपनी प्रभुता का विश्वास करे तो उसमें स्थिरता का अभ्यास करे, परन्तु जीव को अनादि से अपनी प्रभुता का विश्वास नहीं आता। अज्ञानी जीव, कस्तूरी मृग की तरह अपनी परमात्मशक्ति को भूलकर बाहर में भ्रमता है; इस कारण स्वद्रव्य का आश्रय चूककर परद्रव्यानुसार परिणमता है — यह अशुद्धोपयोग है। सच्चा भान होने के पश्चात् परलक्ष्य से जो शुभाशुभ परिणति होती है, वह भी अशुद्धोपयोग में आती है और स्वभाव की प्रभुता को पहिचानकर उसमें लीन रहने से शुभाशुभ परिणति नहीं होती, वह शुद्धोपयोग है।

ज्ञानी—मुनि कहते हैं कि स्वद्रव्य सन्मुखता से शुद्धोपयोग होता है और परद्रव्य सन्मुखता से अशुद्धोपयोग होता है; इसलिए स्व—पर द्रव्यों को भिन्न जानकर, मैं समस्त परद्रव्यों के प्रति मध्यस्थ होता हूँ; इस प्रकार मध्यस्थ होकर मैं परद्रव्यानुसार परिणति से होनेवाले अशुद्धोपयोग से मुक्त होता हूँ और केवल स्वद्रव्यानुसार परिणति के ग्रहण से शुद्धोपयोगरूप परिणमता हूँ।

यहाँ ज्ञानप्रधान कथन होने से अशुद्धोपयोग के छोड़ने की बात की है। वस्तुतः मैं 'अशुद्धोपयोग को छोड़ूँ' — ऐसे लक्ष्य से वह नहीं छूटता परन्तु स्वद्रव्य को लक्ष्य में लेकर उसके ध्यान में स्थिर हुआ, वहाँ अशुद्धोपयोग हुआ ही नहीं; इसीलिए 'अशुद्धोपयोग को छोड़ा' — ऐसा कहा जाता है।

सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान में भी ऐसे शुद्धोपयोग की ही भावना है। बीच में प्रतिमा या महाव्रतादि का शुभराग आये, उसकी भावना नहीं है और न वह उसमें धर्म मानता है। शुभ—अशुभ उपयोग तो परद्रव्य के संयोग का, अर्थात् संसार का कारण है और शुद्धोपयोग मुक्ति का कारण है। शुद्धोपयोग कहने से सम्यग्दर्शन—ज्ञान—चारित्र तीनों आ जाते हैं।

इस प्रकार यहाँ आचार्यदेव कहते हैं कि मैं शुद्धोपयोग प्रगट करके सदा आत्मा में निश्चलरूप से उपयुक्त रहता हूँ। यद्यपि इस टीका लिखने के काल में उनको शुभविकल्प वर्तता है परन्तु अन्तर स्वभाव के आदर में उस विकल्प का निषेध वर्तता है। उनकी भावना इस विकल्प के आश्रय में अटकने की न होकर, शुद्धात्मा के पूर्ण आश्रय की ही है; इस कारण वे कहते हैं कि मैं शुद्ध उपयोग प्रगट करके सदा आत्मा में ही निश्चलरूप से उपयुक्त रहता हूँ — यह मेरा शुद्धोपयोग का अभ्यास है।

सर्व प्रथम सत्समागमपूर्वक आत्मा की सच्ची समझ करना शुद्धोपयोग का कारण है। जीव ने अनन्त काल में अन्य सब तो किया है; परन्तु कभी भी आत्मा की सच्ची समझ नहीं की है। आत्मा की सच्ची समझ अपूर्व है। यदि जीव एक समय भी आत्मा को पहिचाने तो मुक्तिपथ का पथिक हुए बिना नहीं रहे।●●

क्रमशः

द्रव्यानुयोग

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन

कर्त्ता कर्म क्रिया द्वार प्रवचन

भेदज्ञान से अज्ञानरूप विकार और ज्ञानमूर्ति जीव भिन्न पहचाने जा सकते हैं। जैसे सब्जी में नमक का स्वाद भिन्न है और सब्जी का स्वाद भिन्न है; उसीप्रकार भगवान आत्मा के निजरस का स्वाद आनन्दमय है और विभाव का स्वाद दु:खरूप और आकुलतामय कहा है। व्रतादि के शुभराग में भी आकुलता है। यदि व्रतादि के शुभराग में आकुलता न होकर शान्ति हो, तब तो सिद्ध के भी व्रतादि होने चाहिए; परन्तु सिद्ध के व्रतादि नहीं होते। इसका कारण यह है कि व्रतादि का राग विकल्प है, वृत्ति का उत्थान है, उसमें आकुलता ही है, सुख नहीं है। इसीलिए सिद्ध को आदर्श बनाकर लक्ष्य में लो कि सिद्ध में जो है, वह मेरे स्वभाव में है और सिद्ध में जो नहीं है वह मेरे स्वभाव में भी नहीं है।

विभाव अज्ञानरूप है और जीव ज्ञानरूप है यह भेदविज्ञान से पहचाना जा सकता है। राग के विकल्प से भिन्न पढ़कर आत्मा का भान हो, वहाँ दोनों की परीक्षा हो जाती है।

'भरमसौं करम कौ करता है चिदानन्द' –भगवान चिदानन्द को जहाँ तक अपने स्वभाव का भान नहीं है, वहाँ तक वह भ्रम के कारण कर्म का कर्ता होता है। भ्रम से ही पुण्य–पाप के विकल्प का भी कर्ता होता है। इसलिए आत्मा को राग और कर्म का कर्ता मानना मिथ्यात्व है।

लोग इस बात को नहीं समझते, इसलिए ऐसा कहते हैं कि ये लोग (सोनगढ़वाले) मन्दिर बनाते हैं, पूजा करते हैं, भक्ति करते हैं, दया–दानादि सब करते हैं; परन्तु प्ररूपण ऐसा करते है कि पुण्य हेय है। वास्तव में उन लोगों को पता नहीं है कि ऐसे समस्त राग के प्रकार आये बिना नहीं रहते हैं। उनको हम करते नहीं, परन्तु वे आते हैं, वे जानने लायक हैं, आदरणीय नहीं। जहाँ तक पूर्ण वीतरागता न हो वहाँ तक शुभराग आाता है, होता है; परन्तु वह

जीव का स्वरूप नहीं है।

'दरव विचार करतारभाव नखिये' –द्रव्यदृष्टि से विचारे तो 'आत्मा रागादि विकार का कर्ता है, कर्म का कर्ता है, शरीर की क्रिया का कर्ता है' –ऐसा भाव छोड़ देना चाहिए। जो द्रव्यस्वभाव की दृष्टिपूर्वक विभाव के कर्तापने की बुद्धि छोड़ दे, उसके ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते है।

अब कहते हैं कि पदार्थ अपने स्वभाव का ही कर्ता है।

पदार्थ अपने स्वभाव का कर्त्ता है

ग्यान-भाव ग्यानी करै, अग्यानी अग्यान।
दर्वकर्म पुदगल करै, यह निहचै परवान॥17॥

अर्थः– ज्ञानभाव का कर्त्ता ज्ञानी है, अज्ञान का कर्त्ता अज्ञानी है और द्रव्यकर्म का कर्त्ता पुद्गल है ऐसा निश्चयनय से जानो ॥17॥

काव्य – 17 पर प्रवचन

देखो! जीव कर्म का कर्ता नहीं है यह बात तो पहले सिद्ध की है। कर्म जड़ की पर्याय है, इसलिए उसका कर्ता जड़-पुद्गल द्रव्य है, जीव उसका कर्ता नहीं है। जब जीव अज्ञानभाव से अज्ञान को करता है, तब कर्म स्वयं आकर बँध जाते हैं। 'मोक्षशास्त्र' में ज्ञान की आशातना के छह बोलों में आता है कि जीव ज्ञान की आशातना-विराधना के ऐसे परिणामों से ज्ञानावरणी कर्म बाँधता है, उन परिणामों का कर्ता जीव है यह सत्य है; परन्तु जड़कर्म का कर्ता जीव नहीं है।

ज्ञानी जीव तो अज्ञान को भी नहीं करता है। वह तो अपने निर्मल ज्ञानभाव को कर्ता है ; क्योंकि ज्ञानी तो स्वयं ज्ञानस्वरूप है और उसकी दृष्टि भी स्वभाव पर है इसकारण ज्ञानी विकार का कर्ता नहीं होता और इसीलिए ज्ञानी जड़कर्म के बंधन में निमित्त भी नहीं होता। अज्ञानी की दृष्टि पुण्य-पाप पर होने से वह उनका कर्ता होता है और जड़कर्म के बंधन में निमित्त होता है। कर्मों का वास्तविक कर्ता तो पुद्गल स्वयं ही है।

इसप्रकार तीन बोल हुए–

(1) धर्मी जीव ज्ञान-आनन्द आदि निर्मल परिणाम को करते हैं; क्योंकि उनकी दृष्टि में निर्मल ध्रुव चैतन्य है। धर्मी जीव विकार परिणाम को नहीं करता है। धर्मी व्यवहार रत्नत्रय को भी नहीं करता है।

(2) अज्ञानी पुण्य-पाप, शुभाशुभ परिणाम को करता है, जड़ के कार्यों को तो अज्ञानी भी नहीं करता। तो प्रश्न हो सकता है कि- यह सब कारखाना आदि जड़ के कार्य का कर्त्ता होता दिखता है न ?नहीं भाई! अज्ञानी के कार्य की मर्यादा भी अपने विकारी परिणाम तक ही है। अज्ञानी अपने स्वभाव को भूलकर अज्ञान से पुण्य-पाप विकार को करता है; परन्तु जड़ के कार्य तो अज्ञानी जीव भी नहीं कर सकता है। जिसमें चैतन्यस्वभाव का अंश भी नहीं है -ऐसे दया, दान, व्रत, भक्ति आदि शुभपरिणाम और हिंसा, झूठ आदि अशुभपरिणामों को अज्ञानी जीव करता है; क्योंकि उसकी दृष्टि ही पुण्य-पाप पर है। मेरा स्वभाव क्या है इसका तो अज्ञानी को पता ही नहीं है। इसलिए वह धर्म भी नहीं कर सकता और जड़ के कार्यों को तो जीव कर ही नहीं सकता- इस कारण जड़ को भी नहीं करता। वह तो 'मात्र मैं यह कार्य करता हूँ और ये सब मेरे हैं' -ऐसे अनेकप्रकार के भ्रम करता है।

यह देखो न! लड़का परदेश में और तुम यहाँ अकेले हो न! दो द्रव्य ही भिन्न है। यहाँ अकेले रोटी खाते हो- ऐसा भी नहीं है। अज्ञानी भी रोटी खाने की क्रिया को नहीं कर सकता, वह मात्र राग-द्वेष करता है; परन्तु रोटी खाने की क्रिया को आत्मा तीनकाल में नहीं कर सकता है।

श्रोता:- कारखाने इत्यादि चलते हों उनका क्या करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री:- कारखाना कोई परद्रव्य के आधार से नहीं चलता। वह भी सत्तावाला पदार्थ है, इसलिए उसका धारावाही परिणमन जिस समय जैसा होने योग्य है, वैसा होता ही है।

(3) द्रव्यकर्म का कर्त्ता पुद्गल है। इसीप्रकार जगत के प्रत्येक पदार्थ के परिणमन का कर्त्ता वह द्रव्य है, परद्रव्य उसका कर्त्ता नहीं है।

पहले बोल में 'ज्ञानी ज्ञानभाव का कर्त्ता है' -ऐसा कहा, उसका क्या

अर्थ है? कि चैतन्यवस्तु ध्रुव स्थिर बिम्ब जैसी है, वैसी जिसने जानी है, वह ज्ञानी हो गया है। वह अब जैसी अपनी चैतन्य शक्ति है, वैसी पर्याय को करता है। इसलिए वह ज्ञान परिणाम का कर्त्ता है।

श्रोता:– साहब! हमको तो जीव व्यापार–धंधा, खातों का ऑडिट आदि करता दिखता है, तथापि आप जैसा कहते हो, वैसा हम मानते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री:– तुम स्वयं निर्णय करो न! परद्रव्य (कोई भी द्रव्य) एक समय भी अपने परिणाम को किये बिना नहीं रहता। तो जो स्वयं परिणमता है, उसको दूसरा क्या परिणमायेगा?सभी द्रव्य अपनी–अपनी क्रिया किये बिना रहते ही नहीं। तुम अपने परिणाम की क्रिया को करते हो और परद्रव्य उसकी अपनी क्रिया को करता है। कोई भी एक–दूसरे की क्रिया को नहीं कर सकता है।

जिसको शुद्ध चैतन्य ज्ञायकभाव अपने रूप से ज्ञात हुआ है –ऐसा धर्मी, भले ही वह चक्रवर्ती होवे तो राज्य में पड़ा दिखे, छियानवें हजार स्त्रियों के समूह में दिखे; तथापि वह पर की क्रिया को बिलकुल नहीं करता। उसको रानी आदि के संयोग के प्रति लक्ष्य जाने से विकल्प होता है; परन्तु वह विकल्प का कर्त्ता या भोक्ता नहीं है।

जीव शरीर, स्त्री, मकान, लक्ष्मी, प्रतिष्ठा आदि को न तो करता है और न भोगता है। अज्ञानी जीव ऐसा मानता हैं कि मैं कर्त्ता हूँ और भोक्ता हूँ; परन्तु वस्तुत: वह भी परद्रव्य का कर्त्ता–भोक्ता नहीं हो सकता है। 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में पागल का दृष्टान्त दिया है न! नदी के किनारे पागल बैठा था। वहाँ स्वयमेव राजा ने पड़ाव डाला; अत: मनुष्य, हाथी, घोड़े, पालकी इत्यादि आने लगे तो उस पागल को ऐसा लगा कि यह सब मेरे लिए आया है। वहाँ थोड़ी देर ठहरकर भोजनादि कार्यों से निवृत्त होकर सब चलने लगे तो पागल कहता है कि बिना मुझसे पूछे सब कैसे जाते हो?..अरे..! हम तो अपने कारण आये हैं और अपने कारण जाते हैं। वहाँ तू क्यों मालिक बनने आया है? पागल है!

दृष्टान्त में पागल की तरह यह जीव भी स्त्री आवे, पुत्र आवे, पैसा आवे– इत्यादि सब अपने कारण से आते हैं, वहाँ यह मानता है कि ये सब मेरा है। इनका अच्छी तरह ध्यान रखता है; परन्तु भाई ! ये तेरे कारण नहीं आये हैं। ये तो इनका काल पूरा होते ही चले जाने वाले हैं। तू व्यर्थ ही ममता करके भ्रम में भूल रहा है।

श्रोता:– बहुत भूला यह तो.... !

पूज्य गुरुदेवश्री:– अरे ! ऐसा भूला कि भींत (दीवार) में से बाहर निकलना चाहता है। दरवाजे में से निकलने के बदले बाहर निकलने के लिए दीवार में सिर पछाड़ने जैसी मूर्खता कर रहा है।

यहाँ तो आचार्य महाराज अत्यन्त ही संक्षिप्त भाषा में ज्ञानी और अज्ञानी के कार्य को कहते हैं कि ज्ञानी ज्ञान को करता है और अज्ञानी अज्ञान को करता है। जड़ के कार्य को तो ज्ञानी या अज्ञानी कोई नहीं करता। जड़ कर्म को पुद्गल करता है। ये तीन महासिद्धांत एक पद में आ गये है।

जिसने पुण्य–पाप रहित आत्मा को जाना है वही वास्तव में आत्मा हुआ है। वह आत्मा अपने निर्मल श्रद्धा–ज्ञान–चारित्रादि निर्मल परिणामों को करता है। वैसे तो 'आत्मा और उसके निर्मल परिणाम'– ऐसा भेद पड़ता होने से उनका कर्त्ता आत्मा को कहना भी उपचार है; परन्तु यहाँ तो यह सिद्ध करना है कि आत्मा पर का कर्त्ता नहीं है; इसलिए ज्ञानी को ज्ञान का कर्त्ता कहा है।

अज्ञानी अज्ञान का कर्त्ता है। अज्ञान अर्थात् अन्दर में पुण्य–पाप का विकल्प उत्पन्न होता है, उसमें ज्ञान का अंश नहीं है; इसलिए वह विकारी परिणाम है; उसको अज्ञानी करता है। अज्ञानी अपने निर्मल स्वभाव को तो भूल गया है, इसलिए वह पुण्य–पाप के परिणाम को ही निज मानकर करता है।

द्रव्यकर्म का कर्त्ता पुद्गल है। ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय आदि द्रव्यकर्मों का कर्त्ता वे कर्म के परमाणु स्वयं ही हैं। कर्म के परमाणु

दर्शनावरणी आदि भिन्न-भिन्न प्रकृतिरूप परिणमते हैं। ज्ञानी अथवा अज्ञानी कोई जीव कर्म के परिणाम को नहीं करता है।

अब 17वाँ कलश कहते हैं। यह कलश समस्त बालकों को कक्षा में पढ़ाते समय भी सिखाया जाता है। उसमें कहते हैं कि ज्ञान का कर्त्ता जीव ही है, अन्य नहीं-

आत्मा ज्ञान स्वयं ज्ञान ज्ञानादन्यत्करोति किम् ।
परभावस्य कर्त्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम् ॥17 ॥

ज्ञानरूप आत्मा ही ज्ञान का कर्त्ता है, अन्य नहीं। द्रव्यकर्म को जीव करता है यह व्यवहार कथन है।

यहाँ कहते हैं कि आत्मा को परभाव का कर्त्ता मानना यह मिथ्यादृष्टि का अज्ञान है। अब इसमें पुत्री को अच्छी जगह विवाहना, निरोगी पैसेवाला दामाद खोजना, प्रतिष्ठा बढ़ाना -ऐसे सब कार्य चतुर व्यक्ति कर सकता है यह बात कहाँ रही ?परन्तु ये चार-चार लड़कियाँ जवान हो गई हैं, इनका विवाह कर दूँ; फिर धर्म के लिए कुछ निवृत्ति मिलेगी; लड़के का विवाह ऐसी जगह किया है कि वहाँ से सहायता मिल सकती है और उनके एक ही लड़की है, इसलिए वारिसपना भी मेरे पुत्र को ही मिलेगा। जिनके पुत्र नहीं होते वे अन्य को गोद लेते हैं, ऐसे सब अनेक प्रकार के मोहवाले जीव होते हैं, वे सब महामूर्ख हैं। मैंने परद्रव्य की क्रिया व्यवस्थित कर दी- ऐसी तेरी मान्यता ही महामूर्खता पूर्ण है।

'मोहोऽयं व्यवहारिणाम्' का अर्थ कलशटीका में 'मिथ्यादृष्टि का अज्ञान है' -ऐसा किया है, वह सत्य है। मिथ्यादृष्टि की ऐसी मिथ्यामान्यता है। आत्मा परभाव को नहीं कर सकता है यह वस्तुस्थिति है; इसका बहाना बनाकर दूसरों के रुपये देने होने पर भी ऐसा कहता है कि मैं पैसा दे नहीं सकता, इसलिए नहीं देता -ऐसी खोटी बात नहीं चलती। जीव अपने परिणाम तो कर सकता हैं। पर की क्रिया नहीं कर सकता; स्वयं के भाव ही पैसे देने के नहीं है, उसका क्या ? । क्रमशः

स्वानुभूतिदर्शन : बहिनश्री की तत्त्वचर्चा

प्रश्न :— 'श्रीमद् राजचन्द्र' में आता है कि पात्रता के लिये विशेष प्रयत्न रखना; तो उस पात्रता का स्वरूप क्या ?

समाधान :— आत्मा को ग्रहण करने हेतु अपनी विशेष पात्रता होनी चाहिए। अन्य में किसी प्रकार की तन्मयता न हो, आत्मा की महिमा छूटकर बाहर की कोई महिमा न आये, कोई बाह्य वस्तु आश्चर्यजनक न लगे, एक अपना आत्मा ही आश्चर्यकारी एवं सर्वोत्कृष्ट लगे, आत्मा की अपेक्षा किसी अन्य वस्तु की महिमा बढ़ न जाये, देव-शास्त्र-गुरु और एक आत्मा की अपेक्षा अन्य कुछ भी विशेष भासित न हो, ऐसी पात्रता होनी चाहिए। बाहर के निष्प्रयोजन प्रसंगों में अथवा कषायों के रस में विशेष एकत्व-तन्मयता हो जाये, वह सब आत्मार्थी हो-पात्रतावान को नहीं होता। जिसे आत्मा का प्रयोजन है उसे पर के साथ एकत्व मन्द हो जाता है—अनंतानुबंधी का समस्त रस मन्द पड़ जाता है।

आत्मार्थी को ऐसी जिज्ञासा बनी रहती है कि तत्त्व का ग्रहण कैसे हो ? उसे बाह्य में कहीं विशेष तन्मयता नहीं हो जाती। आत्मा की मुख्यता छूटकर सांसारिक कार्यों में कहीं विशेष-अधिक रस नहीं आ जाता। उसे आत्मा का ही प्रयोजन रहता है। ऐसी उसकी पात्रता होती है।

श्रीमद्जी में आता है न ? कि—विशालबुद्धि, मध्यस्थता, सरलता और जितेन्द्रियता ये सब तत्त्व प्राप्ति के उत्तमपात्र (लक्षण) हैं। आत्मार्थी कहीं राग के प्रति आकर्षित और द्वेष में खेदखिन्न नहीं होता, सर्वत्र मध्यस्थ रहता है। उसके सब राग-द्वेष छूट नहीं जाते, किन्तु रस सब उड़ जाता है, सब मर्यादा में आ जाता है। सम्यग्दर्शन होने पर वह सबसे पृथक् हो जाता है और उसके तो सब मर्यादा में आ जाता है। ज्ञानी को अनन्तानुबंधी का रस

छूट गया है, सबसे न्यारा हो गया है और भेदज्ञान (वर्तता) है, जिसके कारण वह मर्यादा बाहर नहीं जुड़ता, उसे एकत्व नहीं होता किन्तु भिन्न ही रहता है। उसको ज्ञायकता की धारा चलती है। पात्रतावान को भी आत्मा प्रगट करना है इसलिए वह सर्वत्र से रस तोड़ता है और कहीं विशेष तन्मय नहीं होता। किन्हीं विकल्पों में या बाह्य कार्यों में या घर-कुटुम्ब आदि में वह विशेष तन्मय नहीं होता। 'कषाय की उपशान्तता, मात्र मोक्ष अभिलाष', मात्र मुक्ति की—मोक्ष की अभिलाषा उसे रहती है। प्रत्येक कार्य में उसे आत्मा का ही प्रयोजन रहता है।

मुमुक्षु :— जिसको आत्मा का प्रयोजन मुख्य है, उसको साथ ही मध्यस्थता, जितेन्द्रियता आदि सबका मेल होगा?

बहिनश्री :— उन सबका मेल होता है; जितेन्द्रियता, सरलता आदि सब होते हैं। जिसे आत्मा का प्रयोजन हो, वह अपने आन्तरिक परिणामों को समझ सकता है, इसलिए कहीं विशेष लिप्त नहीं होता, आत्मा के सिवा उसे कहीं विशेष रस नहीं आता; उसे अपना आत्मा ही सर्वोत्कृष्ट रहता है। अपना आत्मा न मिले तब तक 'मुझे कैसे आत्मा की प्राप्ति हो' ऐसी भावना रहती है; यह सब नीरस लगता है, कहीं मर्यादा के बाहर रस नहीं आता और आत्मा का ही (कार्य) करने जैसा भासता है। वह जीव सब विचार करके 'यह ज्ञानस्वभाव ही मैं हूँ' ऐसा निर्णय करता है। निर्णय किया हो, परन्तु अन्तर से यदि रुचि मन्द हो जाये तो निर्णय में फेर पड़ जाता है। परन्तु यदि पुरुषार्थ, आत्मा के प्रति जिज्ञासा-भावना-लगन ज्यों कि त्यों हो तो निर्णय में फेर नहीं पड़ता। हर जगह पुरुषार्थ तो होता ही है। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के पश्चात् साधकदशा में भी निरन्तर पुरुषार्थ होता है; तो जिसे आत्मा की रुचि हुई उसको भी पुरुषार्थ तो साथ ही रहता है। जिसने अन्तर से निर्णय किया कि आत्मा का ही लाभ करने योग्य है, उसका निर्णय नहीं बदलता। **क्रमशः**

प्रथमानुयोग

....गतांक से आगे

तीर्थधाम चिदायतन

हस्तिनापुर का अतिशयकारी इतिहास

धार्मिक नगरी हस्तिनापुर का वर्णन उत्तरपुराण से

उन महानुभाव ने सुखपूर्वक आयु का उपभोग करते हुए जितना समय मण्डलेश्वर रहकर व्यतीत किया था, उतना ही समय चक्रवर्तीपना प्राप्त कर व्यतीत किया था। तदनन्तर, अपने पूर्वभव का स्मरण होने से जिन्हें आत्मज्ञान उत्पन्न हो गया है, ऐसे विद्वानों में श्रेष्ठ भगवान कुन्थुनाथ निर्वाण-सुख प्राप्त करने की इच्छा से राज्यभोगों में विरक्त हो गये। सारस्वत आदि लौकान्तिक देवों ने आकर बड़े आदर से उनका स्तवन किया। उन्होंने अपने पुत्र को राज्य का भार देकर इन्द्रों के द्वारा किया हुआ दीक्षा-कल्याणक का उत्सव प्राप्त किया। तदनन्तर देवों के द्वारा ले जाने योग्य विजया नाम की पालकी पर सवार होकर वे सहेतुक वन में गये। वहाँ तेला का नियम लेकर जन्म के ही मास पक्ष और दिन में अर्थात् वैशाख शुक्ल प्रतिपदा के दिन कृत्तिका नक्षत्र में सायंकाल के समय एक हजार राजाओं के साथ उन्होंने दीक्षा धारण कर ली। उसी समय उन्हें मन:पर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया। दूसरे दिन वे हस्तिनापुर गये वहाँ धर्ममित्र राजा ने उन्हें आहारदान देकर पंचाश्चर्य प्राप्त किये। इस प्रकार घोर तपश्चरण करते हुए उनके सोलह वर्ष बीत गये। किसी एक दिन विशुद्धता को धारण करनेवाले भगवान तेला का नियम लेकर अपने दीक्षा लेने के वन में तिलकवृक्ष के नीचे विराजमान हुए। वहीं चैत्रशुक्ला तृतीया के दिन सायंकाल के समय कृत्तिका नक्षत्र में उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। उसी समय हर्ष के साथ सब देव आये। सबने प्रार्थना कर चतुर्थ कल्याणक की पूजा की। उनके स्वयंभू आदि पैंतीस गणधर थे, सात सौ मुनिराज पूर्वों के जानकार थे, तैंतालीस हजार एक सौ पचास मर्मवेदी शिक्षक थे, दो हजार पाँच सौ निर्मल अवधिज्ञान के धारक थे तीन हजार दो सौ केवलज्ञान से देदीप्यमान थे, पाँच हजार एक सौ विक्रियाऋद्धि के धारक थे, तीन हजार तीन सौ

मन:पर्ययज्ञानी थे, दो हजार पचास प्रसिद्ध एवं सर्वश्रेष्ठ वादी थे, इस तरह सब मिलाकर साठ हजार मुनिराज उनके साथ थे। भाविता को आदि लेकर साठ हजार तीन सौ पचास आर्यिकाएँ थीं, तीन लाख श्राविकाएँ थीं, दो लाख श्रावक थे, असंख्यात देव-देवियाँ थीं और संख्यात तिर्यंच थे। भगवान दिव्यध्वनि के द्वारा इन सबके लिए धर्मोपदेश देते हुए विहार करते थे। इस प्रकार अनेक देशों में विहारकर जब उनकी आयु एक मास की बाकी रह गई तब वे सम्मेदशिखर पहुँचे। वहाँ एक हजार मुनियों के साथ उन्होंने प्रतिमा योग धारण कर लिया और वैशाख शुक्ल प्रतिपदा के दिन रात्रि के पूर्वभाग में कृत्तिका नक्षत्र का उदय रहते हुए समस्त कर्मों का उखाड़कर परमपद प्राप्त कर लिया। अब वे निरंजन-कर्मकलंक से रहित हो गये। देवों ने उनके निर्वाण-कल्याणक की पूजा की। उनका वह परमपद अत्यन्त शुद्ध ज्ञान और वैराग्य से परिपूर्ण तथा अविनाशी था।

जो पहले भव में राजा सिंहरथ थे, फिर विशाल तपश्चरणकर सर्वार्थसिद्धि के स्वामी हुए, फिर तीर्थंकर और चक्रवर्ती इस प्रकार दो पदों को प्राप्त हुए, जो छह प्रकार की सेनाओं के स्वामी थे, तीनों लोकों के मुख्य पुरुष जिनकी पूजा करते थे, जिन्हें सम्यक्त्व आदि आठ गुण प्राप्त हुए थे, जो तीन लोक के शिखर पर चूड़ामणि के समान देदीप्यमान थे और जिनकी महिमा बाधा से रहित थी ऐसे श्रीकुन्थुनाथ भगवान तुम सबके लिए अविनाशी-मोक्षलक्ष्मी प्रदान करें। जिनके शरीर की कान्ति में इन्द्र सहित समस्त देव निमग्न हो गये, जिनकी ज्ञानरूप ज्योति में पंचतत्त्व सहित समस्त आकाश समा गया, जो लक्ष्मी के स्थान हैं, जिन्होंने फैला हुआ अज्ञानान्धकार नष्ट कर दिया, और जो अनन्त गुणों के धारक हैं, ऐसे श्री कुन्थुनाथ भगवान तुम सबके लिए मोक्ष का निश्चय और व्यवहार मार्ग प्रदर्शित करें।

इस प्रकार आर्ष नाम से प्रसिद्ध, भगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीत त्रिषष्टि-लक्षण महापुराण संग्रह में कुन्थुनाथ तीर्थंकर और चक्रवर्ती का वर्णन करनेवाला चौसठवाँ पर्व समाप्त हुआ।

क्रमशः

करणानुयोग

भरतक्षेत्र के खण्ड

45. व्यक्ता-अव्यक्तता :

1. व्यक्तता अथवा अव्यक्तता / प्रगटता अथवा अप्रगटता - पृथ्वी में स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण - ये चारों गुण व्यक्त (व्यक्त रूप से परिणत) हैं और शेष अव्यक्त हैं, वायु में स्पर्श व्यक्त होता है और शेष अव्यक्त होते हैं।

2. जिस प्रकार परमाणु में गन्धादि गुण अव्यक्त रूप से होते हैं, उसी प्रकार शब्द भी अव्यक्त रूप से रहता होगा ऐसा नहीं है। शब्द तो परमाणु में व्यक्त रूप से या अव्यक्त रूप से बिल्कुल होता ही नहीं है।

46. पुद्गल द्रव्य के भेदों का कथन :

पुद्गल द्रव्य के दो भेद -

1. स्वभाव पुद्गल, 2. विभाव पुद्गल।

उनमें **परमाणु** स्वभाव पुद्गल है और **स्कन्ध** विभाव पुद्गल है। स्वभाव पुद्गल के कार्य परमाणु और कारण परमाणु ऐसे दो प्रकार हैं।

47. स्कन्धों के छह प्रकार हैं :-

1. पृथ्वी, 2. जल, 3. छाया, 4. चक्षु के अतिरिक्त चार इन्द्रियों के विषयभूत स्कन्ध। 5. कर्म योग्य स्कन्ध, 6. कर्म अयोग्य स्कन्ध।

48. अंगुल तीन प्रकार का :

1. उत्सेधाँगुल, 2. प्रमाणाँगुल, 3. आत्माँगुल।

परिभाषा से सिद्ध किया - अँगुल **उत्सेधाँगुल** या सूच्यँगुल है।

प्रमाणाँगुल का लक्षण -

पाँच सौ उत्सेधाँगुल प्रमाण अवसर्पिणी काल के प्रथम चक्रवर्ती के एक अँगुल का नाम ही '**प्रमाणाँगुल**' है।

आत्माँगुल का लक्षण -

जिस-जिस काल में भरत और ऐरावत क्षेत्र में जो-जो मनुष्य हुआ करते हैं, उस-उस काल में उन्हीं मनुष्यों के अँगुल का नाम '**आत्माँगुल**' है।

उत्सेधाँगुल द्वारा माप करने योग्य वस्तुएँ–

उत्सेधाँगुल से देव, मनुष्य, तिर्यंच एवं नारकियों के शरीर की ऊँचाई का प्रमाण और चारों प्रकार के देवों के निवास स्थान एवं नगरादि का प्रमाण मापा जाता है।

प्रमाणाँगुल से मापने योग्य पदार्थ–

द्वीप, समुद्र, कुलाचल, वेदी, नदी, कुण्ड, सरोवर, जगती और भरतादि क्षेत्र का प्रमाण प्रमाणाँगुल से ही होता है।

आत्माँगुल से मापने योग्य पदार्थ –

झारी, कलश, दर्पण, वेणुभेरी, युगशैय्या, शकट (गाड़ी), हल, मूसल, शक्ति तोमर, सिंहासन, बाण, नालि, अक्ष–चामर, दुन्दुभि, पीठ, छत्र, मनुष्यों के निवास स्थान, नगर और उद्यानादिकों की संख्या आत्माँगुल से ही समझना चाहिए।

49. पाद से कोश पर्यन्त की परिभाषाएँ :–

6 अँगुलों का पाद, दो पादों की विलस्ति, दो विलस्तियों का हाथ, दो हाथों का रिक्कु, दो रिक्कुओं का दण्ड, दण्ड के बराबर अर्थात् चार हाथ प्रमाण ही धनुष, मूसल तथा नाली और दो हजार दण्ड या धनुष का एक कोस होता है।

50. योजन का माप :–

चार कोस का एक योजन होता है। उतने ही अर्थात् एक योजन विस्तार वाले गोल गड्ढे का गणित शास्त्र में निपुण पुरुषों को घनफल से जानना चाहिए।

महायोजन दो हजार कोस का होता है।

51. सागर का माप :

एक योजन गहरे और इतने ही चौड़े एक गड्ढे को, उत्तम भोग भूमि के सात दिन तक के मेढ़े के बच्चे के बालों को, कैंची से इतना छोटा करके कि उस बाल के दो टुकड़े अब न हो सकें, ठसाठस भर दिया जाये। अब उस गड्ढे में से प्रत्येक सौ वर्ष में एक–एक बाल निकाला जाये। जितने समय में

वह गड्ढा खाली हो जाये, उतना समय एक व्यवहारपल्य है। ऐसे असंख्यात व्यवहारपल्य एक उद्धार पल्य के बराबर हैं। असंख्यात उद्धार पल्य एक अद्धापल्य के बराबर है। ऐसे दस करोड़ अद्धापल्यों को दस करोड़ अद्धापल्यों से गुणा करने पर एक सागर की माप होती है।

52. चारों गतियों के जीवों की उत्कृष्ट आयु :

कठोर पृथ्वीकायिक जीव की उत्कृष्ट आयु –	22 हजार वर्ष
मृदु पृथ्वीकायिक जीव की उत्कृष्ट आयु –	12 हजार वर्ष
जलकायिक जीव की उत्कृष्ट आयु –	7 हजार वर्ष
अग्निकायिक जीव की उत्कृष्ट आयु –	3 दिन
वायुकायिक जीव की उत्कृष्ट आयु –	3 हजार वर्ष
प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव की उत्कृष्ट आयु –	10 हजार वर्ष
इतर निगोद सूक्ष्म बादर की आयु –	अन्तर्मुहूर्त
सूक्ष्म, पृथ्वी, अप्, तेज, वायु की आयु –	अन्तर्मुहूर्त
दो इन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट आयु –	12 वर्ष
तीन इन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट आयु –	49 दिन
चार इन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट आयु –	6 महीने
पंचेन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट आयु –	3 पल्य
देव व नारकी की उत्कृष्ट आयु –	33 सागर
देव व नारकी की जघन्य आयु –	10 हजार वर्ष
पक्षियों की उत्कृष्ट आयु –	72 हजार वर्ष
सर्पों की उत्कृष्ट आयु –	42 हजार वर्ष
छाती से सरकने वाले अजगर –	9 पूर्वांग

53. अवगाहना :

एकेन्द्रिय चतुष्क पृथ्वी, जल, तेज, वायुकाय के जीवों की अवगाहना उत्कृष्ट घन अंगुल के असंख्यातवें भाग है। प्रत्येक वनस्पति की उत्कृष्ट अवगाहना युक्त कमल एक हजार योजन का है।

दो इन्द्रिय शंख की उत्कृष्ट अवगाहना –	12 योजन लम्बा
तीन इन्द्रिय कानखजूरा उत्कृष्ट अवगाहना –	3 कोस लम्बा
चौ इन्द्रिय भ्रमर उत्कृष्ट अवगाहना –	1 योजन
पंचेन्द्रिय बड़ामच्छ उत्कृष्ट अवगाहना –	1000 योजन लम्बा
नरक में उत्कृष्ट अवगाहना –	500 धनुष
भवनवासी असुर देव उत्कृष्ट अवगाहना –	25 धनुष
बाकी नौ की ऊँचाई अवगाहना –	10 धनुष
व्यंतर देव ऊँचाई उत्कृष्ट अवगाहना–	10 धनुष
ज्योतिषी देव की उत्कृष्ट अवगाहना –	7 धनुष
सौधर्म ईशान की उत्कृष्ट अवगाहना–	7 हाथ
सानत्कुमार माहेन्द्र की उत्कृष्ट अवगाहना–	6 हाथ
ब्रह्म ब्रह्मोत्तर की उत्कृष्ट अवगाहना–	5 हाथ
लान्तव कापिष्ठ की उत्कृष्ट अवगाहना–	5 हाथ
शुक्रमहाशुक्र ऊँचाई की उत्कृष्ट अवगाहना–	4 हाथ
शतार सहस्रार की उत्कृष्ट अवगाहना–	4 हाथ
आनत प्राणत की उत्कृष्ट अवगाहना–	साढ़े तीन हाथ
आरण अच्युत की उत्कृष्ट अवगाहना–	3 हाथ
ग्रैवेयिक के शुरु में उत्कृष्ट अवगाहना–	ढ़ाई हाथ
ग्रैवेयिक के मध्य में उत्कृष्ट अवगाहना–	दो हाथ
ग्रैवेयिक के ऊपर में उत्कृष्ट अवगाहना–	डेढ़ हाथ
नव अनुदिश की उत्कृष्ट अवगाहना –	एक हाथ
पाँच अनुत्तर की उत्कृष्ट अवगाहना –	एक हाथ
मनुष्य अवसर्पिणी के पहला काल में –	तीन कोस
अन्तिम छठे काल में –	एक हाथ।

54. वैमानिकों के पटल :

सोलह स्वर्गों में –	52 पटल

नव ग्रैवेयिकों में –	नौ पटल
नौ अनुदिश का –	एक पटल
पाँच अनुत्तर विमान का –	एक पटल,

इस प्रकार कुल 63 पटल होते हैं।

55. योनि के भेद :

जीवों के उत्पत्ति स्थान को योनि कहते हैं। इसके 2 भेद हैं —

1. आकृति योनि, 2. गुण योनि।

आकृति योनि के तीन भेद —शंखावर्त, कूर्मोन्नत, वंशपत्र।

गुण योनि के नौ भेद—सचित्त, अचित्त, सचित्ताचित्त, शीत, उष्ण, शीतोष्ण, संवृत, विवृत, संवृतविवृत।

56. असंज्ञी जीव के विषय (गोम्मटसार गाथा नं० 168)

एकेन्द्रिय, स्पर्शन इन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र—चार सौ धनुष है और द्वीन्द्रिय आदिक का वह विषय दोगुना दोगुना है।

द्वीन्द्रिय, रसनेन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र चौसठ धनुष है। वह भी आगे-आगे दुगुना है।

इसी प्रकार सभी इन्द्रियों का समझना चाहिए।

घ्राणेन्द्रिय का विषय तीन इन्द्रिय के	– 100 धनुष
चतुरेन्द्रिय के	– 200 धनुष
असंज्ञी पंचेन्द्रिय	– 400 धनुष
चक्षुइन्द्रिय विषय क्षेत्र	– 2954 योजन
और असंज्ञी पंचेन्द्रिय	– 5908 योजन
असंज्ञी पंचेन्द्रिय के कर्ण का	– 800 धनुष

संज्ञी जीव के स्पर्शन, रसना, घ्राण इन तीनों इन्द्रियों में से प्रत्येक का विषयभूत क्षेत्र नौ-नौ योजन है। श्रोत्रेन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र बारह योजन है तथा चक्षुइन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र सैंतालीस हजार दो सौ त्रेसठ योजन से कुछ अधिक है।

क्रमशः

प्रथमानुयोग

कवि परिचय

पण्डित छत्रपतिजी

आपका समय संवत् 1872 से 1925 तक माना जाता है। आप अवागढ़ के निवासी थे। आपकी मुख्य रचनाओं में 'कृपण जगावन चरित्र' मुख्य है। इस कृति को तुलसीदास के समकालीन माना जाता है। कवि ने ब्रह्मगुलाल के चरित्र का भी सुन्दर वर्णन किया गया है। अभी इनकी एक कृति 'मनमोहन पंचशती' और प्रकाश में आई है। इस रचना में 513 पद्य हैं। जिनमें दोहा, चौपाई तथा सवैयों का प्रयोग किया गया है।

इनके अतिरिक्त पण्डित छत्रपति जी के हिन्दी के लगभग 160 पद्य और उपलब्ध हुए हैं। सभी पद्य उच्चस्तर के हैं। कहीं-कहीं क्लिष्टता अवश्य आ गई है। इनकी शैली का उदाहरण इस पद में प्रस्तुत हैं :—

आज नेम जिन बदन विलोकत,
विरह व्यथा सब टूट गई जी।
बदन चंद समीर नीर ते
अधिक शान्तिता हिए भई जी ॥आज० ॥1 ॥
भव तन भोग रोग सम जाने।
प्रभु सम हीन उमंग भई जी ॥आज० ॥2 ॥
छत्र सराहुत भाग्य आपनो।
राजमति प्रतिबोध भई जी ॥आज० ॥3 ॥

इनके अतिरिक्त पण्डित दौलतराम जी के समकालीन कवियों में तनसुखदास जी तथा बख्तावरमल जी भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

करणानुयोग

श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान का स्वरूप

द्रव्यानुयोग

आचार्य ब्रह्मदेव कहते हैं—

प्राभृततत्त्वार्थसिद्धान्तादौ यत्र शुद्धाशुद्धजीवादि षड्द्रव्यादीनां मुख्यवृत्त्या व्याख्यानं क्रियते स द्रव्यानुयोगो भण्यते।

वृहद् द्रव्यसंग्रह, टीका पृष्ठ 208

अर्थात् प्राभृत और तत्त्वार्थ सिद्धांतादि में जहाँ मुख्यरूप से शुद्ध-अशुद्ध जीवादि छह द्रव्य आदि का व्याख्यान किया जाता है, वह द्रव्यानुयोग कहलाता है। द्रव्यानुयोग जीव और अजीवरूप उत्तम तत्त्वों को पुण्य, पाप, बन्ध, मोक्ष तथा द्रव्यश्रुत और भावश्रुत को प्रकाशित करता है।

द्रव्यानुयोग की कसौटी पर कसकर ही वस्तु तत्त्व को समझा जाता है। जिससे मोक्षमार्ग में कहीं पर भी अटक न हो और मार्ग प्रशस्त होता चला जाए। द्रव्यानुयोग वह प्रकाश स्तम्भ है, जिसमें जीव, अजीव, पुण्य, पाप, बंध आदि तत्त्वों को भली प्रकार आलोकित किया जाता है।

आचार्य समन्तभद्र कहते हैं —

जीवाजीवसुतत्त्वे पुण्यापुण्ये च बंधमोक्षौ च।
द्रव्यानुयोगदीपः श्रुतविद्या लोकमातनुते॥

रत्नकरण्ड श्रावकाचार, श्लोक 46

अर्थात् जो द्रव्यानुयोगरूप दीपक है, वह जीव और अजीव इन दोनों निर्बाध तत्त्वों को, पुण्य-पाप को तथा बंध-मोक्ष को भावश्रुत ज्ञान रूप सम्यग्ज्ञान प्रकाश के द्वारा जैसा इनका स्वरूप है, वैसा प्रकाशित करता है।

आचार्य वीरसेन स्वामी कहते हैं—

संताणियोगम्हि जमत्थित्तं उत्तं तस्स पमाणं परूवेदि दव्वाणियोगो। **धवला, पुस्तक-1, पृ. 159**

अर्थात् सत्प्ररूपणा में जो पदार्थों का अस्तित्व कहा गया है, उनके प्रमाण का वर्णन द्रव्यानुयोग करता है।

पण्डित आशाधरजी कहते हैं—

जीवाजीवौ बन्धमोक्षौ पुण्यपापे च वेदितुम्।
द्रव्यानुयोगसमयं समयन्तु महाधियः॥

धर्मामृत अनगार, तृतीय अध्याय, श्लोक-12

अर्थात् तीक्ष्ण बुद्धिशाली पुरुषों को जीव-अजीव, बन्ध-मोक्ष और पुण्य-पाप का निश्चय करने के लिए सिद्धान्त सूत्र द्रव्यानुयोग विषयक शास्त्रों को सम्यक् रीति से जानना चाहिए।

तत्त्वार्थसूत्र, पंचास्तिकाय, समयसार, द्रव्यसंग्रह आदि ग्रन्थ द्रव्यानुयोग के उदाहरण हैं।

द्रव्यानुयोग का प्रयोजन

द्रव्यानुयोग में द्रव्यों का व तत्त्वों का निरूपण करके जीवों को धर्म में लगाते हैं। जो जीव जीवादिक द्रव्यों को व तत्त्वों को नहीं पहचानते, आप को, पर को भिन्न नहीं जानते, उन्हें हेतु, दृष्टान्त, युक्ति एवं प्रमाण, नयादि द्वारा उनका स्वरूप इसप्रकार दिखाया है जिससे, उनको प्रतीति हो जाए। उसके अभ्यास से अनादि अज्ञानता दूर होती है। अन्यमत कल्पित तत्त्वादिक झूठ भासित हों, तब जिनमत की प्रतीति हो और उनके भाव को पहचानने का अभ्यास रखे तो शीघ्र ही तत्त्वज्ञान की प्राप्ति हो जाए।

तथा जिनके तत्त्वज्ञान हुआ हो, वे जीव द्रव्यानुयोग का अभ्यास करें तो उन्हें अपने श्रद्धान के अनुसार वह सर्व कथन प्रतिभासित होते हैं। जैसे किसी ने कोई विद्या सीख ली; परन्तु यदि उसका अभ्यास करता रहे तो वह याद रहती है, न करें तो भूल जाता है। इसी प्रकार इसको तत्त्वज्ञान हुआ परन्तु यदि द्रव्यानुयोग का अभ्यास करता रहे तो वह तत्त्वज्ञान रहता है, न करे तो भूल जाता है। अथवा संक्षेपरूप से तत्त्वज्ञान हुआ था, वह नाना युक्ति, हेतु, दृष्टान्तादि द्वारा स्पष्ट हो जाए तो उसमें शिथिलता नहीं हो सकती। तथा इस अभ्यास से रागादि घटने से शीघ्र मोक्ष सधता है।

इस प्रकार द्रव्यानुयोग का वर्णन हुआ।

क्रमशः

<u>बालवाटिका</u>

आगे बढ़ा दें!

बेंजामिन फ्रैंकलिन अपने आरंभिक दिनों में एक अखबार छापता था और आगे चलकर वह उसका सम्पादन और प्रकाशन भी करता था। उसके पास सांसारिक वस्तुओं की कोई अधीनता न थी। एक बार उसे रुपयों की जरूरत पड़ी। उसने एक धनी व्यक्ति से 20 डॉलर माँगें उस व्यक्ति ने तुरन्त बीस डालर सोने की मोहरें दे दीं।

थोड़े समय में फ्रेंकलिन 20 डालर बचा सका और उसे वापस करने लगा।

जब बीस डॉलर के सिक्के मेज पर रखे गए, तो उसका मित्र चकित हो गया। वह बोला– उसने कभी 20 डॉलर उधार नहीं दिये थे। फ्रैंकलिन ने उसे याद कराया कि अमुक अवस्था में उसने डालर दिये थे।

''हाँ, दिये तो थे।''

'' इसीलिए मैं लौटाने आया हूँ।''

''लौटाने की बात तो कभी नहीं हुई थी। लौटाने की बात मैं कभी सोच ही नहीं सकता।''

''इन सोने के सिक्कों को रखों।'' उसने कहा। किसी दिन कोई तुम्हारे पास आयेगा, जिसे वैसी ही आवश्यकता होगी, जैसी कभी तुम्हें थी, उसे दे देना।

''यदि वह एक ईमानदार आदमी है तो वह जब भी तुम्हें डॉलर लौटाने आयेगा। जब वह आये तो उससे कहना कि वह इन मोहरों को रखे और अपनी ही जैसी अवस्था में जो कोई माँगने आये, उसे दे दे।''

कहा जाता है कि वह बीस डॉलर की मोहरें आज भी अमेरिकन संयुक्त प्रजातन्त्र में किसी न किसी की आवश्यकता पूरी करती हुई घूम रही हैं।

शिक्षा – ईमानदारी से ही विश्वसनीयता का जन्म होता है। ईमानदारी किसी दूसरे को दिखाने के लिए नहीं, अपितु यह तो स्वयं में वर्तने वाला एक सहज परिणाम लगना चाहिए। ईमानदारी होने पर सहज पुण्य का संचय होता है। बेईमानी का परिणाम होने पर पाप का ही बंध होता रहता है।

''जिस प्रकार–उसी प्रकार'' में छिपा रहस्य

जिस प्रकार– वैद्य रोगी के दोषों की ओर ध्यान न देकर उनके प्रति दयाभाव से इलाज ही करता है।

उसी प्रकार– ज्ञानीजन भी जगत के अज्ञानी जनों के दोषों की ओर ध्यान न देकर दयाभाव से उन्हें हित का मार्ग ही बताते हैं। क्रूर दुर्जन के प्रति भी क्षोभ न करके मध्यस्थ भाव रखते है।

जिस प्रकार– स्त्री का श्रृंगार मात्र उसके पति के लिए है, उसे देखकर कोई अन्य यदि विकार करे तो पापी ही है।

उसी प्रकार– पुद्गल का समस्त परिणमन पुद्गलमय पुद्गल के लिए ही है। उसमें अपनत्व, भोक्तृत्व कर्तृत्व आदि की मान्यता करने वाला मिथ्यादृष्टि ही जानना।

जिस प्रकार– गंदी हवा, गंदा भोजन एवं गंदा पानी करने वाले शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ नहीं रह पाते।

उसी प्रकार– कुसंगति तथा लौकिक संगति में रहने वाले कुविचार करने वाले आत्मिक दृष्टि से स्वस्थ एवं शान्त नहीं रह पाते है।

जिस प्रकार– ठग का विश्वास करना दुःखमय ही है।

उसी प्रकार– इन क्षणिक संयोगों पर्यायों आदि का विश्वास करना अनन्त दुःखमय संसार का ही कारण है।

जिस प्रकार– हीरा आदि नग आभूषणों से युक्त होकर शीलवान के अंगों की संगति पाकर विशेष शोभा को प्राप्त होता है।

उसी प्रकार– ज्ञान भी आचरण से युक्त होकर चैतन्य स्वभाव को समर्पित होता है तभी शोभा को प्राप्त होता है।

जिस प्रकार– सूप की फटकार से धान्य साफ हो जाता है।

उसी प्रकार– गुरु की फटकार से शिष्य के अवगुण दूर हो जाते है।

जिस प्रकार– रोगी की अंतरंग रोग मिटे बिना बाह्य वस्त्र, वातावरणादि बदलने से वेदना दूर नहीं होती।

उसी प्रकार– अंतरंग मोह मिटे बिना मात्र संयोग, वेश, क्रियाएं व शब्द बदलने से दुःख दूर नहीं होता। अतः मोह दूर करने हेतु निज, निमोह, निर्दोष, चिदानन्द स्वभाव की दृष्टि कर ।

जिस प्रकार– घर से बाहर होने पर अपने घर की सहज ही याद आती है, घर के शुभ संदेश देने वाले के प्रति स्वयमेव हर्ष होता है। घर में आने पर वे विकल्प नहीं रहते है।

उसी प्रकार– ज्ञानी को स्वानुभूति से बाहर होने की दशा में सहज ही बारम्बार चिदानन्द की याद आती है, शुभ समाचार देने वाले देव–गुरु–शास्त्र के प्रति स्वमेव ही राग उमड़ता है। परन्तु वह तो निज में रमना चाहता है। **क्रमशः**

संकलन – स्व० प्रो० पुरुषोत्तमकुमार जैन, रुड़की

समाचार-दर्शन

तीर्थधाम मङ्गलायतन में

महावीर जन्म कल्याणक सानन्द सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : भगवान महावीर के जन्म कल्याणक के अवसर पर दिनाँक 21 अप्रैल 2024, चैत्र शुक्ल तेरस को तीर्थधाम मङ्गलायतन में भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के छात्रों द्वारा अत्यन्त हर्षोल्लास के साथ महावीर भगवान के जन्म कल्याणक का आयोजन किया गया। जिसमें प्रात: 06.45 से भगवान महावीर का प्रक्षाल पूजन, भगवान महावीर विधान, प्रभातफेरी, पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी प्रवचन, दोपहर में बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन द्वारा षट्खण्डागम, धवलाजी की वाँचना का लाभ ऑनलाईन प्राप्त किया।

सायंकालीन कार्यक्रम में महावीर जिनालय में जिनेन्द्र भक्ति, जन्मकल्याणक की बधाई आदि भक्तिगीतों के माध्यम से भक्ति के कार्यक्रम के पश्चात् **'वर्तमान में वर्धमान'** विषय पर गोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसमें मंगलार्थी अचल जैन तथा पर्व जैन ने संचालन किया। वक्ताओं में मंगलार्थी अन्वय जैन, प्रत्यक्ष जैन, विराट चौहान आदि ने तथा आदरणीया बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन ने भी अपना वक्तव्य भगवान महावीर की शिक्षाओं एवं उनके सिद्धान्तों पर दिया। जिसमें सभी मङ्गलार्थी छात्र, तीर्थधाम मंगलायतन परिवार उपस्थित था।

शिवपुरी पंचकल्याणक सानन्द सम्पन्न

शिवपुरी : धार्मिक नगरी शिवपुरी में श्री कुन्दकुन्द कहान आदिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर, विश्वासनगर व मुमुक्षु आश्रम कोटा के संयोजकत्व में 16 अप्रैल से 21 अप्रैल 2024 तक श्री नेमिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन उत्साहपूर्वक किया गया।

यह महोत्सव बाल ब्रह्मचारी मनोज शास्त्री के प्रतिष्ठाचार्यत्व, पण्डित संजय शास्त्री एवं बालब्रह्मचारी सुनील भैया, शिवपुरी के संचालकत्व में सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर पण्डित राजेन्द्र जैन, जबलपुर; बालब्रह्मचारी सुमतप्रकाशजी, विदिशा; बालब्रह्मचारी श्रेणिक जैन, जबलपुर; पण्डित विपिन शास्त्री, बालब्रह्मचारी महेन्द्रभैया अमायन; श्री सुनील धवल; पण्डित अशोक उज्जैन, डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन के अतिरिक्त लगभग 20 शास्त्री विद्वान उपस्थित रहे।

इस अवसर पर शौरीपुर में महाराजा समुद्रविजय की राजसभा व सौधर्म इन्द्र की इन्द्रसभा में तत्त्वचर्चा, पाण्डुकशिला पर जन्माभिषेक, पालना-झूलन, आहार-दान की विधि, समवसरण, दिव्यध्वनि श्रवण, निर्वाण महोत्सव आदि ज्ञान-आनन्दवर्धक प्रसंगों एवं समागत विद्वानों के मार्मिक व्याख्यानों से सभी के ज्ञान-वैराग्य में वृद्धि हुई। साथ ही गर्भकल्याणक के अवसर पर श्री संजीव जैन, उस्मानपुर द्वारा विशेष आध्यात्मिक भजन संध्या आयोजित हुई। तपकल्याणक के अवसर पर पण्डित शुद्धात्मप्रकाश भारिल्ल द्वारा मोटिवेशनल स्पीच और ब्राह्मीसुन्दरी विद्यानिकेतन की बालिकाओं द्वारा जैन रामायण पर तत्त्वपरक लघु नाटिका का मंचन किया गया।

प्रतिष्ठा में सौधर्म इन्द्र-इन्द्राणी श्री साकेत सरावगी-सुश्रुता सरावगी, कोलकाता; कुबेर इन्द्र-इन्द्राणी श्री पारस जैन-निधि जैन, दिल्ली एवं भगवान के माता-पिता श्री पूरनमल जैन-कुसुम जैन, शिवपुरी रहे। ध्वजारोहण श्री राकेश जैन-विभा जैन परिवार, नोएडा ने किया और सम्पूर्ण कार्यक्रम में भाईश्री शशिकान्त एम.सेठ भावनगर की प्रेरणा से श्री रणधीर परिचन्द घोषाल परिवार एवं साकेत शान्तिकुमार सरावगी परिवार, कोलकाता का विशिष्ट सहयोग प्राप्त हुआ।

इसी प्रसंग में जन्म कल्याणक के अवसर पर **आगामी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महामहोत्सव हस्तिनापुर तीर्थधाम चिदायतन का आमन्त्रण** पण्डित संजय शास्त्री, पण्डित राजेन्द्र जी, पण्डित विराग शास्त्री, जबलपुर, श्री वज्रसेनजी दिल्ली, डॉ. सचिन्द्र शास्त्री तथा मंगलार्थी अंकित आरोन, वरांग जैन इन्दौर, संयम जैन आगरा की उपस्थिति में दिया गया।

वैराग्य समाचार

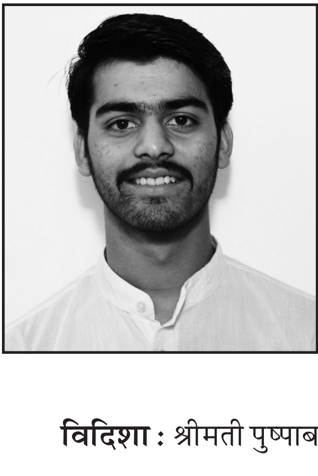

तीर्थधाम मंगलायतन : दिनांक 28/4/2024 को तीर्थधाम मंगलायतन के कक्षा 12 वीं के होनहार प्रतिभावान मंगलार्थी आरव जैन जो कि मध्यप्रदेश के नीमच जिले के सिंगोली तहसील निवासी थे। आप अत्यंत रुचिवंत एवं कर्तव्यनिष्ठ मंगलार्थी थे आपकी क्षति अपूरणीय है। इस अकस्मात देह-परिवर्तन से, संपूर्ण मंगलायतन परिवार क्षुब्ध एवं सम्पूर्ण मुमुक्षु समाज अपूरणीय क्षति से आहत है।

विदिशा : श्रीमती पुष्पाबाई जैन का देह परिवर्तन हो गया है। आपका सम्पूर्ण

जीवन धर्ममय था। आप बालब्रह्मचारी सुमतप्रकाशजी जैन की माताश्री तथा मंगलार्थी सिद्धांश की दादी थीं।

तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार दिवंगत आत्माओं के सुगतिगमन, बोधिलाभ एवं शीघ्र मुक्ति प्राप्ति की भावना भाता है।

षट्खण्डागम ग्रन्थ की वाचना अनवरत प्रवाहित

पन्द्रहवीं पुस्तक की वाचना 29 अप्रैल 2024 से प्रारम्भ

विद्वत् समागम – आदरणीय बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर

दोपहर	01.30 से 03.15 तक (प्रतिदिन)	**षट्खण्डागम (धवलाजी)**
रात्रि	07.30 से 08.30 बजे तक	मूलाचार ग्रन्थ का स्वाध्याय
	08.30 से 09.15 बजे तक	**समयसार ग्रन्थाधिराज के कलशों का व्याकरण के नियमानुसार शुद्ध उच्चारण सहित सामान्यार्थ**

नोट—इस कार्यक्रम में आप ZOOM ID-9121984198,

● Password - tm@4321 youtube channel - teerthdhammangalayatan

के माध्यम से भी शामिल हो सकते हैं।

जून 2024 माह के मुख्य जैन तिथि-पर्व

1 जून – ज्येष्ठ कृष्ण 9-10
श्री विमलनाथ गर्भ कल्याणक

3 जून – ज्येष्ठ कृष्ण 12
श्री अनंतनाथ जन्म-तप कल्याणक

5 जून – ज्येष्ठ कृष्ण 14
चतुर्दशी
श्री शांतिनाथ जन्म-तप-मोक्ष कल्याणक

6 जून – ज्येष्ठ कृष्ण 15
श्री अजितनाथ गर्भ कल्याणक

10 जून – ज्येष्ठ शुक्ल 4
श्री धर्मनाथ निर्वाण कल्याणक

11 जून – ज्येष्ठ शुक्ल 5
श्रुतपंचमी

14 जून – ज्येष्ठ शुक्ल 8
अष्टमी

18 जून – ज्येष्ठ शुक्ल 12
श्री सुपार्श्वनाथ जन्म-तप कल्याणक

20 जून – ज्येष्ठ शुक्ल 14
चतुर्दशी

23 जून – आषाढ़ कृष्ण 2
श्री ऋषभनाथ गर्भ कल्याणक

27 जून – आषाढ़ कृष्ण 6
श्री वासुपूज्य गर्भ कल्याणक

29 जून – आषाढ़ कृष्ण 8
अष्टमी
श्री विमलनाथ मोक्ष कल्याणक

मंगल अवसर

तीर्थधाम चिदायतन पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

हस्तिनापुर में, तीर्थधाम चिदायतन का निर्माण कार्य तेजी से चल रहा है, तीर्थधाम मंगलायतन के निर्देशन में ही तीर्थधाम चिदायतन का पंचकल्याणक – 01 दिसम्बर से 06 दिसम्बर 2024 तक होना निश्चित हुआ है।

जगत में पंचकल्याणक सम्यग्दर्शन का सर्वोत्कृष्ट निमित्त कार्य है आप यहाँ के अभिन्न अंग हैं यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आप सपरिवार पधारे... आप सभी लोग तो पधार ही रहे हैं, साथ में और भी अपने मित्रों, परिजनों, साधर्मी जनों को भी लेकर आना है। ऐसी हमारी विनती है।

आप हमसे निम्नरूप से जुड़ सकते हैं —

पंचकल्याणक में जो भी पात्र बाकी है उनको भरा जाना है....

पद	संख्या
भगवान आदिनाथ की 71 इंच उन्नत श्वेत मार्बल की कायोत्सर्गवंत प्रतिमा	
भगवान महावीर की 71 इंच उन्नत श्वेत मार्बल की कायोत्सर्गवंत प्रतिमा	
ईशान इन्द्र–इन्द्राणी	
सानत इन्द्र–इन्द्राणी	
माहेन्द्र इन्द्र–इन्द्राणी	
8 नंबर से 12 नंबर पद इन्द्र	
13 नंबर से 16 नंबर पद इन्द्र	
लौकान्तिक देव	
माता–पिता	
महामंत्री	
यज्ञनायक	
1 से 8 वें नम्बर के राजा	
9 से 12 वें नम्बर राजा	
राजसभा के छड़ीदार	2
भूमिगोचर राजा	4

विद्याधर राजा	4
अष्टदेवी (6)	16
56 कुमारी	
चौबीसी जिनालय शिखर	
चौबीसी जिनालय शिखर कलश	
चौबीसी जिनालय वेदी	
मुख्य शिखर ध्वजा	
मुख्य तोरण द्वार	
सिंह द्वार	
मुख्य प्रवेश द्वार	
मुख्य निकास द्वार	
जिनवाणी विराजमानकर्ता	
श्री कुन्दकुन्दाचार्य फोटो	
श्री अकम्पनाचार्य फोटो	
पण्डित टोडरमलजी फोटो	
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी फोटो	
रैम्पमार्ग प्रदर्शनी	
शान्तिनाथ जीवनगाथा	

यह अवसर चूकने जैसा नहीं है सभी किसी न किसी रूप में जुड़े, आपके जो भी भाव हो कृपया सूचित करें।

आशा ही नहीं, अपितु पूर्ण विश्वास है कि आप हमारे आग्रह को अवश्य स्वीकार करके इस **पामर से परमात्मा** बनने के महान कार्य में अपनी सहभागिता अवश्य प्रदान करेंगे।

किसी का कोई सुझाव हो तो हमें अवश्य बतलाएँ।

धन्यवाद

सम्पर्क :-

पण्डित सुधीर शास्त्री, 9756633800 ; डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, 7581060200

तीर्थधाम चिदायतन पंचकल्याणक महामहोत्सव हेतु प्राप्त शुभकामना

डॉ. मुकेश 'तन्मय' शास्त्री
एम.ए., पी.एच.डी.
संपादक 'ज्ञानधारा'
मो. 94251 48507

'ज्ञान-कमल' 7 सिटी सेन्टर
हॉस्पिटल रोड, विदिशा
464001 (म.प्र.)
फोन : 07592- 232234

दिनांक 21 अप्रैल 2024

जिनधर्मानुरागी तत्त्वरूचिवंत श्रीयुत बधुवर स्वप्निलजी, पं. जे.पी. दोशी, पं. सुधीर शास्त्री एवं समस्त मंगलायतन परिवार को सादर सविनय शुद्धात्म वंदन।

- आशा है आप सानंद स्वस्थता पूर्वक कुशल मंगलमय होंगे।
- महामहोत्सव की तैयारियां जोर-शोर से चल रही होगी।
- आपके द्वारा प्रेषित तीर्थधाम चिदायतन हस्तिनापुर के ऐतिहासिक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आमंत्रण पत्र प्राप्त हुआ, इस हेतु आपने हमें स्मरण किया तदर्थ आभार।
- परमादरणीय श्री पवनजी भाईसाहब की अनुपस्थिति में यह प्रथम महामहोत्सव है जो बंधुवर श्री स्वप्निलजी के निर्देशन में सानंद सफलता पूर्वक सम्पन्न होगा।
- निश्चित ही यह महामहोत्सव पार्ला (मुम्बई) एवं सोनगढ पंचकल्याणक की तरह अभूतपूर्व एवं अविस्मर्णीय रहेगा, मेरी भावना भी है कि इस महामहोत्सव का प्रत्येक्ष साक्षी बनूँ एवं दोनों सुपुत्रों मंगलार्थी सी.ए. संगम जैन या इंजी. सागर जैन दोनों में से एक को साथ लाने की भावना है।
- अतः आवास हेतु तीन सदस्यों का एक अटैच रूम विद्वत वर्ग के साथ यथा योग्य देख लें जी, मेरे योग्य कार्य यथा योग्य सूचित करें जी।
- पुनश्च महामहोत्सव की प्रभावना एवं सफलता की मंगलमय हार्दिक शुभकामनाओं साहित...

आपका धर्मस्नेही बंधु
डॉ. मुकेश 'तन्मय' शास्त्री
मंत्री : श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सोनागिर
मंत्री : आचार्य कुन्दकुन्द स्मारक ट्रस्ट, विदिशा

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2024-26

वस्तुस्वरूप की गर्जना करनेवाले मुनिराज

आ...हा..हा! जङ्गल में रहनेवाले वीतरागी सन्तों को तो देखो। जङ्गल में जैसे सिंह गर्जन करता है, वैसे ही मुनिराज वस्तुस्वरूप की गर्जना करते हैं। सिद्ध भगवान जैसा आत्मानुभव करते हैं, ठीक वैसा ही आत्मानुभव मुनिराज भी करते हैं। सिद्ध तथा साधक दोनों एक ही जाति का अतीन्द्रिय आनन्द अनुभवते हैं; उसमें कुछ भी अन्तर नहीं है।.... यही मोक्षमहल का सीधा मार्ग है।

(– योगसार प्रवचन, पृष्ठ–१०९, ११०)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक स्वप्निल जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़–202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़–202001 से प्रकाशित। **सम्पादक :** डॉ. जयन्तीलाल जैन,मङ्गलायतन वि०वि०

If undelivered please return to -

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ–कुन्दकुन्द–कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़–202001 (उ.प्र.)

Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust

Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)

Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22

info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com